जलविज्ञान एवं जल संसाधन
पर राष्ट्रीय संगोष्ठी
15-16 दिसम्बर, 1995, रूड़की

कृषि पर सूखे का जोखिम घटाने में मृदा संरक्षण एवं कृषि वानिकी युक्तियों की उपयोगिता

राजेन्द्र प्रसाद पान्डेय[1] योगेश कुमार धामा[2] कोटा श्रीरामाशास्त्री[3]

सारांश

जल संरक्षण एवं इसके लाभप्रद उपयोग के अतिरिक्त मृदा–संरक्षण एवं कृषि–वानिकी युक्तियां भी सूखे की संकटावस्था में कृषि के लिए उपयोगी एवं आवश्यक है । देश के विभिन्न प्रान्तों में किये गये जल परिक्षेत्र पर आधारित (Watershed Basis) शोध परिणामों का विश्लेषण करने से यह बात स्पष्ट होती है कि सूखा ग्रस्त क्षेत्रों में मृदा–संरक्षण एव कृषि–वानिकी युक्तियों का उपयोग तथा वृक्षों एवं फसलों की मिश्रित खेती पद्धति सूखें के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने में सहायक है । इस प्रपत्र में कृषि--सूखे का संकट घटाने के उपायों को ध्यान में रखते हुए, मृदा--जल–संरक्षण एवं कृषि–वानिकी की कुछ उपयोगी युक्तियां प्रस्तुत की गई हैं तथा सूखा प्रभावित क्षेत्रों में इन युक्तियों के प्रसार हेतु कुछ उपयुक्त सुझाव दर्शाए गए हैं ।

प्रस्तावना

भूमि एवं पानी दोनों मूल प्राकृतिक संसाधन हैं । पृथ्वी पर जीवन भूमि एवं पानी पर ही निर्भर करता है । देश के कृषि योग्य भूमि में से लगभग 25 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में से मृदा अपक्षय की समस्या ज्वलन्त है । एक आंकलन के अनुसार भारत में कृषि भूमि से लगभग 16.35 टन प्रति हैक्टेयर से मृदा की हानि प्रतिवर्ष हो जाती है । जो कि सारे देश में 5334 लाख टन के बराबर हो जाती है । इस मृदा का लगभग 29 प्रतिशत तो समुद्र में, 10 प्रतिशत बांधों में जमा होकर, उनकी संचय क्षमता को एक से दो प्रतिशत प्रतिवर्ष घटा देता है और 61 प्रतिशत एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण होकर, ज्यादातर नदियों के तलों में जमा होता रहता है (ध्रुवनारायण एवं राम बाबू, 1983)।

हमारे देश में लगभग 72% कृषि भूमि शुष्क खेती के अन्तर्गत है, जो पूर्णतः वर्षा पर आधारित हे । मानूसनी वर्षा में कमी एवं विचलन कृषि पर सूखे का मुख्य कारण है । सूखे की समस्या का सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव कृषि उत्पादन पर पड़ता है । सूखे के प्रभाव को कम रखने में मृदा नमी को बनाये रखने का महत्व तब और बढ़ जाता है जब फसलों को पर्याप्त मृदा नमी की उपलब्धता कम होने लगती है । सूखे की स्थिति के परिणाम स्वरूप खड़ी फसलें या तो सूखकर नष्ट हो जाती हैं या उनके उत्पादन में भारी कमी होने की आशंका होती है । ऐसा सूखाग्रस्त प्रान्तों में जहां पर कृषि योग्य भूमि बहुतायात में है किन्तु सिंचित जल का अभाव है, सूखे का सर्वाधिक प्रकोप इन्हीं प्रान्तों में देखने को मिलता है । इन प्रान्तों की विशेष आवश्यकता यह है कि कृषकों को कम से कम एक अच्छी फसल मिले । सामान्यतः सूखा प्रभावित क्षेत्रों में जहां जल संरक्षण की आवश्यकताओं पर जोर दिया जाता है, जो कि निस्सन्देह आवश्यक एवं लाभप्रद

1 वैज्ञानिक 'ब', राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, जलविज्ञान भवन, रूड़की–247667
2 शोध सहायक, राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, जलविज्ञान भवन, रूड़की–247667
3 वैज्ञानिक 'एफ', राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, जलविज्ञान भवन, रूड़की–247667

भी है । इस सम्बन्ध में प्रकाशित अनेकों अनुसंधान प्रपत्र, टिप्पणी, लेख आदि उपलब्ध हैं, जो जल संरक्षण एवं इसके उपयुक्त प्रबन्ध की आवश्यकता का जोरदार समर्थन करते हैं । पाटिल और अन्य (**1981**) द्वारा सूखा प्रभावित क्षेत्र (सोलापुर, महाराष्ट्र) में किये गये अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि पिछले **75** वर्षो में मृदा अपक्षय के कारण इस क्षेत्र में मिट्टी की गहराई (**45** से.मी. या अधिक) **46%** से घटकर **29%** हो गई है और इसके परिणाम स्वरूप मृदा जल धारण क्षमता तथा पौधों के जड़–विकास क्षेत्र घट जाता है जिससे सूखे के समय कृषि उत्पादन में क्षति के आसार बढ़ जाते हैं । पेरूर और अन्य (**1972**) द्वारा कर्नाटक में किये गये एक अन्य अध्ययन से भी कुछ ऐसे ही परिणाम सामने आये हैं । जल संरक्षण एवं इसके लाभप्रद उपयोग के अतिरिक्त मृदा–संरक्षण एवं कृषि–वानिकी युक्तियां भी सूखे की संकटावस्था में कृषि के लिए उपयोगी एवं आवश्यक भी हैं । मृदा–संरक्षण, कृषि–वानिकी तथा फसलों की मिश्रित खेती एक ओर जहां कृषि उत्पादन से आय बढ़ाने में सहयोगी हैं वहीं दूसरी ओर सूखे से फसलों पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को कम करने में सहायक सिद्ध होगा । वैज्ञानिकीय अनुसंधानों से भी इस तथ्य की पुष्टि हुई है । इस प्रपत्र में कृषि–सूखे का संकट घटाने के उपायों को ध्यान में रखते हुए, मृदा–जल–संरक्षण एवं कृषि–वानिकी की कुछ पद्धतियों के उपयोग पर विचार प्रस्तुत किये हैं ।

समस्या

भारत वर्ष की **80** करोड़ आबादी में से लगभग **70%** लोग कृषि पर आधारित और इनमें भी **5%** लोगों को छोड़कर बाकी सभी सीमान्त या लघु कृषक हैं । यह भी लगभग तय है कि हर पांच–वर्षीय योजना अवधि के दौरान कम से कम दो बार देश का एक या दूसरा भाग सूखे की चपेट में होता है खन्ना, **1989** कृषि क्षेत्र को प्रायः सर्वाधिक क्षति का सामना करना पड़ता है । यह निरन्तर महसूस किया जा रहा है कि बड़ी अभियान्त्रिकीय संरचनाएं (**Engineering Structures**) एवं परियोजनाएं मृद्धा सुधार स्वरूप काफी महंगे होते हैं दूसरे पहलू यह भी हैं कि संसाधनों का अपक्षय रोकने में इनका लाभ एवं कार्यक्षेत्र भी सीमित होता है ।

पिछले तीन दशकों के दौरान बहुतायत उपयोग में लाई गई कृषि भूमि, अन्न–सम्बन्धी फसल चक्र, खादों का असन्तुलित मात्रा में उपयोग और दूसरी लागत, अधिक मात्रा में घास क्षेत्रों की चराई तथा वनों के कटाव से मृदा के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हैं । हवा के माध्यम, पानी के कटाव, ऊंचे जल तल तथा भूमि की ऊपरी सतह पर दूब तृण आवरण घटने आदि कारणों से भूमि के अपक्षय के परिणाम स्वरूप, मृदा अनुपजाऊ हो जाती है । मृदा की उर्वरक शक्ति पैदावार लेने के लिए प्रभावी कुंजी है । यह बहुत से गुणाकों पर निर्भर करती है जैसे – मृदा की पैतृक उर्वरकता का स्तर, फसलों की तीव्रता, उर्वरकता बढ़ाने के लिए बाहर से मिलाये गये साधन, और मृदा की किस्म पर निर्भर करता है । एक आंकलन के अनुसार मृदा अपक्षय द्वारा प्रतिवर्ष जोती हुई भूमि में से लगभग **8** लाख टन उर्वरा शक्ति की हानि हो रही है ।

देश में सूखा राहत और रोजगार के साधन उपलब्ध कराने के उद्देश्य से केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा प्रायोजित मृदा एवं जल–संरक्षण कार्यक्रम चलाये जाते रहे हैं । एब्रोल (**1990**) के शब्दों में कहें तो खेतों के स्तर पर अब तक जो सीमित युक्तियां खास तौर पर अपनाइ गई हैं वे हैं – कन्टूर बंडिंग और ग्रेडिड बडिंग । अनुभवों के आधार पर पाया गया है कि गरीब कृषक जिनके पास सीमित साधन हैं, वे इन युक्तियों को स्वीकार नहीं करते हैं क्योंकि उनकी कृषि भूमि का कुछ भाग मेढ़ों के बनाने की वजह से कृषि से वंचित हो जाता है । इसी कारण ज्यादातर लघु कृषक मेढ़ों के रख–रखाव में भी ध्यान नहीं देते हैं । परिणाम स्वरूप मिट्टी की अदला–बदली से भूमिक्षरण में वृद्धि हो जाती है ।

दूसरी समस्या यह देखी गई है कि मृदा, जल, वनस्पति एवं पर्यावरणीय संसाधनों संरक्षण में कृषि–वानिकी के महत्व पर उपयुक्त ध्यान नहीं दिया गया तथा मृदा संरक्षण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन–तंत्र द्वारा कृषकों में जागरूकता पैदा करने में कमी का अनुभव किया गया है । जिससे मृदा–संरक्षण कार्यक्रमों में किसानों ने बढ़–चढ़कर हिस्सा नहीं लिया । फलतः यह कार्यक्रम कृषकों में लोकप्रिय नहीं हो सका ।

समाधान

कृषि भूमि में मृदा-जल संरक्षण की युक्तियां

कृषि भूमि में मृदारक्षण रोकने से वहां की मृदा दो तरह से समृद्ध होती है । पहला तो यह है कि मृदा की नमी धारण करने की क्षमता में वृद्धि होती है । दूसरा मृदा की उर्वरा शक्ति का क्षरण नहीं होता है । जिसके फलस्वरूप मृदा की उर्वरा शक्ति में उत्तरोत्तर बढ़ोतरी होती है । शुष्क खेती वाले क्षेत्रों के लिए मृदा की नमी धारण क्षमता एवं उर्वरा शक्ति में वृद्धि से सूखे के संकट के समय फसलों को होने वाली क्षति के बचाव में सहयोगी सिद्ध होती है । ऐसा ही मत अनेकों अनुसंधानकर्ताओं जैसे – पटनायक और अन्य – 1982 तथा सिंह – 1990 द्वारा भी व्यक्त किये गये हैं ।

खेत में मृदा–जल संरक्षण की कुछ युक्तियां इस प्रकार हैं । जैसे कन्टूर फार्मिंग, कन्टूर बन्डिंग, ग्रेडेड बन्डिंग, ग्रेडेड ट्रेन्चिंग, कन्जरवेशन डिच, टैरेसिंग और रन आफ हार्वेस्टिंग आदि । केन्द्रीय भूमि एवं जल संरक्षण अनुसंधान & प्रशिक्षण संस्थान, देहरादून द्वारा कंटूर खेती, कंटूर मेंढ़े, ढालू मेंढ़े, ढालू खाईयां, संरक्षण डिच और तेज ढलान पर बेंच टेरेसिंग, अपवाह रोकना रन आफ हार्वेस्टिंग, जल संचय बांधन और अपवाह पुनः चक्र को सम्मिलित करते हुए, कृषि भूमि पर मृदा एवं जल संरक्षण के अभ्यास से संबंधित कुछ अध्ययन किये गये हैं जिनमें उपरोक्त युक्तियों की उपयोगिता सिद्ध हुई है ।

कन्टूर फार्मिग को उस भूमि में महत्व दिया जाता हे जहां पर ढ़ाल **3%** या उससे कम होता है । तेजवानी **1981** ने अपने अध्ययन में बताया कि कन्टूर फार्मिग से अपवाह जल में **54** प्रतिशत से घटकर **41** प्रतिशत तथा मृदा क्षरण में **28** टन प्रति हैक्टेयर से घटकर **19** टन प्रति हैक्टेयर हो जाता है ।

कन्टूर बंडिग उन इलाकों में की जाती है जहां ढाल **3** से **6** प्रतिशत के बीच होता है, मृदा की जल शोषण क्षमता अनुकूल होती हे तथा वर्षा जल की मात्रा **500** मि0मि0 वार्षिक या इससे कम होती है । शुष्क क्षेत्रों में किये गये अध्ययनों में यह पाया गया कि कन्टूर बंन्डिग से अपवाह जल के प्रवाह गति में नियन्त्रण करके मृदा अपक्षय प्रभावी ढंग से रोका जा सकता है । तथा अपवाह जल की कुछ मात्रा खेतों में ही शोषित **(Infiltrate)** हो जाती है जो मृदा नमी बढ़ाने के साथ–साथ भू–जल पुनः पूरण **(Ground Water Recharge)** को बढाने में भी सहायक होती है।

ग्रेडेड बन्डिंग उस भूमि पर उपयोगी होती हे जहां पर मृदा की जल शोषण क्षमता कम होती है तथा वर्षा की मात्रा **500** मि0मि0 वार्षिक से अधिक होती है । ग्रेडेड बन्ड की निर्माण के समय इनका ढ़ाल **0.2** से **0.4** प्रतिशत के बीच रखा जाता है । केन्द्रीय मृदा जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, देहरादून **1989** की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार राजस्थान में किये गये अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि केवल ग्रेडेड बन्डिंग युक्ति से ही ज्वार की फसल में **10** से **15** प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है । आन्ध्र–प्रदेश में एक अध्ययन के तहत पता चला कि ग्रेडेड बन्डिंग से मूंगफली की फसल में लगभग **13** प्रतिशत तक की वृद्धि की जा सकती है ।

दोमट मिट्टी वाले क्षेत्रों में संचयन गड्ढ़े जल संचय करने में काफी उपयोगी साबित होते हैं । पटनायक **1982** द्वारा भी एक अध्ययन में इस तथ्य की पुष्टि की गयी है कि चिकनी मिट्टी **(clay soil)** में अधिक समय तक वर्षा जल संचित रखा जा सकता है । श्री पटनायक के अनुसार मल्चिंग युक्ति न केवल सूखे के दौरान मृदा नमी संरक्षण में प्रभावशाली है बल्कि मृदा संरक्षण के लिए भी बहुत उपयोगी है । एक अध्ययन के अन्तर्गत यह पाया गया है कि दो टन प्रति हैक्टेयर मल्च के उपयोग से मृदा एवं जल को प्रभावी ढ़ंग से संरक्षित किया जा सकता है ।

टेरेसिंग युक्ति उस भूमि में अपनाई जाती है जहां ढ़ाल **6** प्रतिशत से **33** प्रतिशत के बीच हो । ओपरेशनल रिसर्च प्रोजेक्ट के तहत किये गये अध्ययनों के अनुसार एक हैक्टेयर भूमि की टेरेसिंग और लेवलिंग की लागत **3500/–** से

5000/– रूपये आती है । जो कि पहले साल में सरसों की फसल और अन्य सम्बन्धी फसलों में – गेहूं लगभग दो साल तथा जौ 4 से 5 साल तक उगाकर उसकी पुनः प्राप्ति की जा सकती है । भूमि टेरेसिंग और लेवलिंग किसानों को कार्बनिक और अकार्बनिक खाद आदि का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती है जिसके फलस्वरूप विभिन्न फसलों की पैदावार 30 से 120 प्रतिशत तक बढाई जा सकती है । केन्द्रीय जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, देहरादून, वार्षिक रिपोर्ट, 1989

कृषि वानिकी द्वारा सूखा संकट घटाना

कृषि–वानिकी को समझाते हुए व्यापक रूप से इस प्रकार परिभाषित किया गया है "कृषि वानिकी एक सामूहिक नाम है – जिसमें कृषि भूमि पर अनाज की फसल एवं वृक्ष संयुक्त रूप से उगाये जाते हैं । सभी भूमि उपयोगी–प्रणाली तथा एक अभ्यास जिसमें बारहमासी वनीय तथा फलदार वृक्ष उन्हीं भूमि प्रबन्ध इकाईयों पर फसलों के साथ में उगाये जाते हैं । यह या तो स्थानीय प्रबन्ध के उच्च रूप में या समय के अनुक्रम के रूप में हो सकता है । कृषि वानिकी को सरल बनाने के लिए, एक दी हुई भूमि उपयोगी प्रणाली और व्यवहारिक कार्यो के लिए वृक्ष और पौध घटकों के बीच आपसी संसामंजस्य एवं उत्पादन लागत आर्थिक रूप से अल्प व्ययी होना जरूरी है (लुडग्रेम, 1982) ।

सूखे की परिस्थितियों में कृषि उत्पादन के पूर्णतया नष्ट होने या कमजोर पड़ने के जोखिम से कृषि वानिकी प्रणाली से की गई खेती सुरक्षित होती है । गुजरात राज्य के राजकोट जिले में सन् 1985 में एक अध्ययन से यह पाया गया है कि सूखा प्रभावी क्षेत्रों में कृषि वानिकी प्रणाली से खेती करने में किसानों को होने वाले क्षति का जोखिम काफी हद तक कम किया जा सकता है । सन् 1985 में राजकोट में सामान्य वर्षा की तुलना में केवल 30 प्रतिशत ही वर्षा हुई । जिसमें मूंग, मूंगफली तथा उड़द से केवल 0.5 से 1.7 टन प्रति हैक्टेयर हरी घास उपलब्ध हुई जबकि स्टोवर की फसल के साथ लूसेनिया की एक संयुक्त खेती द्वारा 0.2 से 1.3 टन प्रति हैक्टेयर स्टोवर की हरी घास तथा 5.6 टन प्रति हैक्टेयर लूसेनिया की हरी घास उपलब्ध हुई । शंकरनारायण, 1984 केवल घास या केवल वृक्ष की खेती से अधिक धन प्राप्ति संभव है (CAZRI) ।

एक अन्य महत्वपूर्ण युक्ति के अन्तर्गत फलदार वृक्षों (Horticulture) के साथ संयुक्त रूप से मोटे खादय या दलहन की फसल उगाना शुष्क खेती क्षेत्र के लिए अत्यन्त लाभकारी है । गुजरात, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के कुछ भागों में जहां अल्प मात्रा में सिंचाई जल उपलब्ध हो पाता है इस तरह की खेती के अच्छे परिणाम सामने आये हैं । इस खेती के अन्तर्गत फलदार वृक्षों की पंक्तियों के मध्य में अनाज या दाल की फसलें (Grain Crop) बोई जाती हैं । सूखे की स्थिति में या अनाज फसल कटने पर जब पर्याप्त नमी उपलब्ध नहीं हो पाती छिद्र युक्त मिट्टी का घड़ा या प्लास्टिक की नली द्वारा वृक्ष की जड़ के पास पानी दिया जाता है इससे वृक्ष को पर्याप्त नमी उपलब्ध होती रहती हे तथा उपयुक्त पैदावार प्राप्त हो जाती है ।

कृषि वानिकी की मृदा संरक्षण में भूमिका

मृदा एवं जल के संरक्षण में वनस्पति की वृद्धि, वायुमण्डलीय संसाधन, कृषि वानिकी की भूमिका महत्वपूर्ण है । प्रायः यह देखा गया है कि मृदा संरक्षण के लिए लघु अभियांत्रिकी संरचना तथा अकार्बनिक साधन, संसाधनों के अपक्षय की समस्या को हल करने के उपाय कम खर्चीले होते हुए भी सीमित मात्रा में अपनाये गये हैं । देश भर में जल परिक्षेत्र वाटर शैड के आधार पर की गई खोजों की ताजा जानकारी के अनुसार यह देखा गया है कि अपवाह और मृदा अपक्षय को नियंत्रित करने में वनस्पतिक आड़ प्रभावशाली है । पौधों, झांड़ियों और वृक्षों द्वारा जल परिक्षेत्र का उपचार एवं प्रबन्ध करके जलीय चक्र में सुधार कर भूमि जल पुनः पूरण बढा कर तथा फार्म में संचित जल से पुरक सिंचाई की जा सकती है । फिर भी, उचित खोज एब्रोल, 1990 द्वारा के होते हुए इसके प्रचार एवं प्रसार की दिशा में थोड़े ही उपाय किये गये हैं । विकास के प्रयासों की कमी के कारण कुछ क्षेत्रों को तुरन्त ध्यान देने के लिए सुझाया गया है ।

कृषि क्षेत्र में वृक्ष एवं झाड़ियों से भू सतह पर वनस्पति का आवरण घना होता है जो मृदा क्षरण को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । भूमि पर पत्तियों के जमाव एवं सड़ने से मृदा में कार्बनिक पदार्थों की बढ़ोतरी होती है । जो मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाती है तथा जड़ों के विकास में भी सहायक होती है । कृषि वानिकी प्रणाली उत्पादन में वृद्धि तथा मृदा संरक्षण दोनों तरह से लाभकारी है । सिंह **1990** के अनुसार कृषि वानिकी की उपयोगिता सर्वप्रथम श्री पैडरों संचेज द्वारा सुझायी गयी । श्री संचेज ने एक अध्ययन के माध्यम से बताया कि उचित कृषि वानिकी प्रणाली मृदा अपक्षय, मृदा में कार्बनिक तत्वों को संरक्षित करने, भौतिक लक्षणों तथा नाइट्रोजन की स्थिरता बढ़ाने, पर्याप्त उर्वरा तत्वों को लम्बे समय तक विद्यमान रखने में अत्यन्त सहयोगी हे । शुष्क एवं अर्द्धशुष्क खेती वाले क्षेत्रों के लिए कृषि वानिकी प्रणाली दोनों प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में अधिक लाभकारी है । कृषि वानिकी से न्यूनतम लागत पर अधिक उत्पादन लाभ प्राप्त करना सम्भव है जिससे मध्यम एवं लघु कृषकों को इसे बड़े पैमाने पर अपनाने में कोई हिचक या कठिनाई नहीं होगी । रनदेव, **1990** । कृषि–वानिकी की उपयोगिता से संबंधित कुछ अनुसंधान साक्ष्य तालिका–1 में दर्शाये गये हैं ।

तालिका : 1 मृदा संरक्षण एवं कृषि वानिकी की उपयोगिता सम्बन्धी अध्ययनों का सारांश :

	विषय	प्रमाण	
		प्रत्यक्ष	अप्रत्यक्ष
1.	अपक्षय नियन्त्रण	*	**
2.	कार्बनिक पदार्थ	*	**
3.	मृदा के भौतिक लक्षण	**	**
4.	नाइट्रोजन तत्वों की स्थिरता	**	0
5.	उर्वरक तत्वों को प्रदान करने में बढ़त	0	*
6.	भूमि में उर्वरक तत्वों का अधिक संचयन	*	**
7.	मृदा आम्लता पर नियंत्रण	0	–
8.	पानी की उपलब्धता : वायु गति अवरोधक या अन्य उपाय	**	0
9.	क्षारीय मृदा के सुधार में कृषि वानिकी की भूमिका	0	*
10.	जड़ों का विकास	*	**
11.	अनुभवों पर आधारित सामान्य मृदा कृषि वानिकी की उपयोगिता	*	**

** = प्रबल प्रमाण; * = अनुकूल परन्तु विरल प्रमाण; – = प्रतिकूल प्रमाण; 0 = कोई प्रमाण नहीं
(स्रोत :– यंग ऐ., **1989**)

यंग **1989** ने कृषि वानिकी पद्धति के निम्नलिखित लाभ बताये :–

(i) मृदा क्षरण नियन्त्रण, (ii) मृदा के अनुकूल भौतिक गुणों की रक्षा करना, (iii) मृदा में कार्बनिक पदार्थों का संरक्षण, (iv) नाइट्रोजन प्रदान करने वाले वृक्षों से नाइट्रोजन का अवलम्बन करना, (v) भूमि की ऊपरी परतों की उर्वरा शक्ति बढ़ाना, (vi) फसलों के लिए उपयोगी मृदा नमी की उपलब्धता बढ़ाना, (vii) सूखे के प्रभाव से होने वाली हानि को कम करना तथा अपक्षयित मृदा की उर्वरा शक्ति का पुनः ग्रहण करना ।

निष्कर्ष एवं सुझाव

अनेक शोध परिणामों विश्लेषण करने के पश्चात यह बात स्पष्ट रूप से साबित होती है कि मृदा जल संरक्षण एवं कृषि वानिकी युक्तियां अल्प व्ययी एवं जल परिक्षेत्र प्रबन्ध **(Watershed Management)** के लिए उपयुक्त है । सामान्य एवं लघु कृषकों द्वारा ये युक्तियां सहजता से अपनाई जा सकती हैं । मृदा जल संरक्षण एवं कृषि वानिकी युक्तियों का व्यापक रूप से उपयोग में लाया जाना सूखा प्रभावित क्षेत्रों के लिए काफी महत्वपूर्ण है । फलदार तथा वनीय वृक्षों के साथ खाद्य एवं दलहन फसलों की संयुक्त खेती–पद्धति उपयोग में लाने से वर्षा की अनिश्चितता वाले क्षेत्रों में सूखे के प्रकोप से कृषि को होने वाली क्षति कम की जा सकती है । देश के विभिन्न प्रान्तों के जल परिक्षेत्र पर आधारित **(Watershed basis)** शोध निष्कर्षो से पता चलता है कि वनस्पतिय उपचारों के माध्यम से जल अपवह एवं मृदा अपक्षय को प्रभावशाली तरीकों से नियन्त्रित किया जा सकता है । जल परिक्षेत्र में वृक्ष एवं झाड़ियों का रोपड़ करके निर्मित वनस्पति अवरोधक भू–जल पुनः पूरण में उल्लेखनीय सुधार किया जा सकता है जो पूरक सिंचाई के लिए पर्याप्त मात्रा में उपयोग में लाया जा सकता हे । उपरोक्त सम्बन्ध में ध्यान दिये जाने हेतु कुछ उपयुक्त सुझाव निम्नलिखित हैं :–

1. क्षेत्र विशेष की जरूरतों के अनुसार उपयुक्त वृक्ष, झाड़ियां एवं व्यवसायिक फसल की किस्मों की पहचान करना।

2. कृषि–वानिकी एवं मृदा–जल–संरक्षण की तकनीकी विधियों की उपयुक्तता स्थापित करना ।

3. कृषि–वानिकी एवं मृदा–जल–संरक्षण युक्तियों से जल परिक्षेत्र के अन्तर्गत, संसाधनों के संरक्षण में होने वाली लाभों का अंशात्मक मूल्यांकन तथा मानीटीरिंग करना ।

4. जल परिक्षेत्रों के लिए उपयोगी पाये गये वृक्षों एवं झाड़ियों की ऐच्छिक किस्मों को उगा कर पौधे तैयार करने हेतु रोपड़ी **(Nursery)** स्थापित करना ।

सन्दर्भ

एब्रोल, आई0पी0 1990. केरिंग फोर ओवर सोयल रिसोर्सीज. इन्टरनेशनल सिम्पोजियम आन वाटर इरोसन, सेडिमेन्टेशन एण्ड रिसोर्स कनजरवेशन, अक्टूबर 09–13, देहरादून ।

खन्ना, एस0एस0 1989. ड्रोट मैनेजमेन्ट. योजना, खण्ड–33, अंक–11, जून 16–30, पेज 4–8

लुन्डग्रेन, बी0. 1982 इन्ट्रोडक्शन. एग्रोफोरेस्ट्री सिस्टमस, 1:3–6

नारायण, ध्रुव; वी0वी0 तथा रामबाबू 1983, अस्टिमेशन आफ सायल इरोसन इन इण्डिया. जनरल आफ इरीगेशन एण्ड ड्रेनेज इन्जिनियरिंग. 109 4 : 419–434

पटनायक, यू0एस0; ई0वी0 जेम्स; एस0 चितरंजन; बी0 रामानाथ तथा आर0 सुब्बायुयन, 1982. कन्जरवेशन डिचिंग फोर सोयल एण्ड वाटर कन्जरवेशन इन डीप ब्लेक सोयल. केन्द्रीय मृदा जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, देहरादून, इंडिया वार्षिक रिपोर्ट ।

पाटिल, एन0डी0; के0 के0 उमरानी; एस0 ए0 सिंन्दे; एस0 पी0 काले और ए0 के0 शिंगटे 1980. "इम्प्रूवड क्रोप प्रोडक्शन टैक्नोलोजी फार ड्राउट प्रोन एरियाज आफ महाराष्ट्र" एम0पी0के0पी0 शुष्क खेती अनुसंधान केन्द्र, सोलापुर द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट ।

पेरूर, एन0जी0 और एम0एस0 मिथ्यन्था (1972). सोयल आफ मैसूर, सोयल आफ इंडिया का एक अध्याय, फर्टिलाइजर एसोसिएशन आफ इंडिया, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पेज 186–204 ।

रनदेव, एच0एस0 1990. रोल आफ एग्रोफौरेस्ट्री इन दी प्रक्टिस आफ ससटेनेबिल प्रोडक्शन सिस्टमस् ऐज पार्ट आफ एग्रीकल्चरल डवलपमैन्ट प्रोजेक्टस् इन नाइजीरिया. इन्टरनेशनल सिम्पोजियम ऑन वाटर इरोसन, सेडिमेन्टशन एण्ड रिसोर्स कन्जरवेशन. अक्टूबर 09–13, देहरादून, भारत ।

सिंह, गुरमेल; 1990. सोयल एण्ड वाटर कन्जरवेशन इन इंडिया. इन्टरनेशनल सिम्पोजियम ओन वाटर इरोसन, सेडिमेन्टेशन एण्ड रिसोर्स कन्जरवेशन, अक्टूबर 09–13, देहरादून, इंडिया ।

सिंह, जी0बी0 एण्ड एच0के0 सिंह. 1990. एग्रोफोरेस्ट्री फोर रिसोर्स. इन्टरनेशनल सिम्पोजियम ओन वाटर इरोशन, सेडिमेन्टेशन एण्ड रिसोर्स कन्जरवेशन, अक्टूबर 09–13, देहरादून, इंडिया ।

शंकरनारायण, के0ए0 (1984). इन्फल्यूएन्स आफ प्रोसोपिक सिनेरारिया एन्ड अकासिया निलोटिका आन सोयल फर्टिलिटी एन्ड क्राप यील्ड इन एग्रोफारेस्ट्री इन एरिड एन्ड सेमी एरिड जोन्स, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर : 59–66 ।

तेजवानी, के0जी0 1981. ऐ क्वार्टर सेन्चुरी आफ सोयल एण्ड वाटर कन्जरवेशन रिसर्च इन इंडिया. केन्द्रीय मृदा जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, देहरादून, इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट।

यंग, एन्थोनी 1989. हाइपोथेसीस फोर सोयल – एग्रोफोरेस्ट्री रिसर्च. एग्रोफोरेस्टी टुडे खंड–1, अंक 1, पेज 13–16।